IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारत और दक्षिण पूर्व एशिया के बीच परस्पर सम्बन्धों की ऐतिहासिक विवेचना

डॉ0 सिद्धार्थ सिंह
असिस्टेन्ट प्रोफेसर
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय
जौनपुर उ0प्र0

उपेन्द्र कुमार
शोध छात्र
प्राचीन इतिहास, पुरातत्त्व एवं संस्कृति विभाग,
तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय
जौनपुर, उ0प्र0
सम्बद्ध : वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय
जौनपुर उ0प्र0

शोध संक्षेप :–

हिन्द महासागर की गोंद में अवस्थित भारत एवं दक्षिण पूर्व एशिया परस्पर ऐतिहासिक विरासत के महत्वपर्ण साझेदार रहे हैं। इसकी झलक इतिहास, संस्कृति, समाज, कला, राजनीति, धर्म, दर्शन आदि के माध्यम से सहजता से देखी जा सकती है। इन दोनों उपमहाद्वीपों के वर्तमान स्वरूप को प्रदान करने में इस सम्बन्ध ने अपनी महत्त्वपर्ण भूमिका निभाई हैं। दक्षिण एशिया में भारत एक राष्ट्र है लेकिन दक्षिण पूर्व एशिया विभिन्न राष्ट्रों का समूह है। इस शोध पत्र के माध्यम से मैं उन प्रभावों का विवेचन एवं विश्लेषण करूंगा, जो परस्पर सम्बन्धों को आकार देने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। और जिनका प्रभाव आम जनजीवन के साथ–साथ इतिहास, संस्कृति, सभ्यता, प्रशासन में भी बहुआयामी रूप से दिखाई देता है।

मुख्यशब्द– सूवर्णद्वीप, दक्षिण पूर्व एशिया, शैलेन्द्र साम्राज्य, चम्पा, कम्बुज।

प्रस्तावना

दक्षिण पूर्व एशिया और भारत के परस्पर ऐतिहासिक सम्बन्धों पर अनेक विद्वानों ने कार्य किया है जिनमें आर0सी0 मजूमदार, सिडो, बैजनाथपुरी, सत्यकेतु विद्यालंकर आदि नाम उल्लेखनीय है। भारत के पूर्व में अवस्थित दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ भारत का प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है। सुस्सोन्दी जातक में सग्ग नामक व्यापारी का उल्लेख है जो भृगकच्छ से जहाज द्वारा अपनी समुद्र यात्रा प्रारम्भ कर सुवर्णद्वीप की यात्रा की।[1] शुरूआत में भारत से व्यापारी वर्ग ने व्यापार

के उद्देश्य से दक्षिण–पूर्व एशिया के देशों की ओर यात्रा की और वहां पर उपनिवेश स्थापित किये। महाजनक जातक में एक विवरण मिलता है कि मिथिला के राजकुमार महाजनक धन कमाने के उद्देश्य से सूवर्णभूमि की यात्रा एक ऐसे जहाज से की जिसमें उसके साथ सात सार्थवाह भी अपने पण्य के लिए व्यापार के लिए गये थे।[2] प्राचीन काल में दक्षिण पूर्व एशिया के साथ भारतीय सम्बन्धों के विवरण देने वाले ग्रन्थों में कौटिल्य का अर्थशास्त्र, बृहत्कथामंजरी, कथासरित्सागर, बृहत्कथाश्लोकसंग्रह आदि प्रमुख है। यात्रा के समय कठिन मार्गों और असुविधाओं से सम्बन्धित विवरण जातक, मिलिन्दपन्हो, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, कात्यायन की वर्तिका में मिलता है।[3] व्यापार एवं धर्म ने भारत एवं दक्षिण–पूर्व–एशिया के बीच सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाया। जिसके परिणामस्वरूप वहां अनेक भारतीय सांस्कृतिक उपनिवेश अस्तित्व में आये। जिसकी भाषा, शासनविधि, धर्म, कला, संस्कृति आदि के स्वरूप में भारतीयता की झलक दिखाई देती है। कम्बोडिया में एक अनुश्रुति के अनुसार भारतीय ब्राह्मण कौडिन्य द्वारा फूनान राज्य की स्थापना किया गया।[4] दक्षिण पूर्व एशिया के लिए सूवर्णदीप का उल्लेख 'पेरिप्लस ऑफ एरिथ्रियन सी' एवं प्लिनी के भूगोल में मिलता है।[5] दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय ब्राह्मण पुजारियों ने कई राज्यों के गठन में महत्वपर्ण भूमिका निभाई। जिसका परिणाम यह हुआ कि इन राजाओं ने संस्कृत भाषा एवं साहित्य को संरक्षण दिया। ये तत्व सम्बन्धों में प्रगाढ़ता बढ़ाने का काम किया।

प्रागैतिहासिक सम्बन्ध :–

भारत का दक्षिण पूर्व एशिया के साथ प्राचीन काल से सम्बन्ध रहा है इसका विवरण प्राप्त प्रागैतिहासिक स्थलों पुरातात्विक स्त्रोतों एवं साहित्यिक स्त्रोतों के आधार पर प्राप्त किया जा सकता है। दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय उपनिवेश की स्थापना यद्यपि प्रथम शताब्दी ई0 में निश्चित की जाती है लेकिन भारतीयों का सुदूरपूर्व से व्यापारिक सम्बन्ध कई सौ वर्ष पहले ही आरम्भ हो चुका था। एक चीनी स्त्रोत से पता चलता है कि अनम और भारत के बीच यातायात का एक स्थल मार्ग था। इसी मार्ग से भारतीयों द्वारा जाकर ब्रह्मा, इरावदी, सालवीन, मेकांग नदी घाटियों तथा युन्नान तक, जिसका नाम उन्होंने गंधार रखा, अपने उपनिवेश स्थापित किये। ओमियो नामक हिन्द–चीन स्थल से भारतीय मुहरें एवं रोमन वस्तुएं मिली हैं। इससे संकेत मिलता है कि विदेशियों का भारत से होकर सुदूरपूर्व तक व्यापारिक सम्बन्ध था। इस व्यापार में जल के साथ–साथ स्थल मार्ग का प्रयोग होता था।[6] भारतीय नाविक शूर्पारक, भरूकच्छ, ताम्रलिप्ति आदि बन्दरगाहों से विदेशों में व्यापार के लिए प्रायः जाया करते थे।

राजनीतिक सम्बन्ध :–

दक्षिण पूर्व एशिया के कई क्षेत्रों में भारतीय उपनिवेश स्थापित हुये तथा कई स्थान पर हिन्दू राज्य स्थापित हुए। इनमें जावा, चम्पा, कम्बुज का उल्लेख मुख्य रूप से किया जा सकता है। फूनान राज्य की स्थापना कौण्डिन्य नामक ब्राह्मण ने की थी। इन्होंने यहां सर्वप्रथम भारतीय उपनिवेश स्थापित किया। कम्बुज राज्य में भारत की तरह राजा को दैवीय स्वरूप प्रदान किया जाता था। एक लेख में जयवर्मन को शिव के अंग से पृथ्वी पर जन्म लेने वाला कहा गया है।[7] चम्पा का प्रथम भारतीय शासक श्रीमार था। इन्होंने लगभग द्वितीय शताब्दी ई0 में अपने राजवंश को स्थापित किया। इसके शासन व कुल के विषय में जानकारी हन्त्रंग क्षेत्र से प्राप्त वो कान्ह लेख से मिलती है।[8] जावा के शासकों के साथ भारतीय शासकों का सम्बन्ध रहा है। जावा के शैलेन्द्रवंशी शासक वालपुत्रदेव के अनुरोध पर पाल शासक देवपाल ने उसे नालन्दा में एक बौद्ध बिहार बनवाने के लिए पाँच गाँव दान में दिया था।[9] चोल शासक राजेन्द्र चोल ने दक्षिण पूर्व एशिया की ओर सैन्य अभियान किया तथा शैलेन्द्र साम्राज्य को अपने नियंत्रण में किया।[10] शैलेन्द्र साम्राज्य का भौगोलिक विस्तार मलय प्रायद्वीप, जावा, सुमात्रा एवं अन्य समीपवर्ती द्वीपों तक था। इस सैन्य अभियान में शैलेन्द्र सम्राट विजयोतुंगवर्मन पराजित हुआ और बन्दी बना लिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि चोल सेना ने कडारम व श्रीविजय को अपने नियंत्रण में ले लिया। इस सैन्य अभियान के विषय में जानकारी तिरूवालंगाडु ताम्रपत्र में मिलता है साथ ही साथ राजेन्द्र चोल के 8वें वर्ष

में उत्कीर्ण करन्डै ताम्रपत्र से भी जानकारी प्राप्त होती है। 'करन्डै ताम्रपत्र' में कहा गया है कि कम्बुज के शासक ने राजेन्द्र चोल के साथ सन्धि स्थापित करने के लिए अनुरोध किया था। यह राजेन्द्र चोल के दक्षिण पूर्व एशिया पर प्रभाव को दर्शाता है।

इस सैन्य अभियान का उद्देश्य चोल शासकों द्वारा दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने के लिए किया गया होगा। जिसमें शैलेन्द्र साम्राज्य बाधा उत्पन्न कर रहा था। हालांकि के0आर0 हाल जैसे विद्वान इस अभियान को चोल–चीन के बीच व्यापारिक सम्बन्ध बढ़ाने में शैलेन्द्र साम्राज्य का बाधा के रूप में उत्पन्न होना बताया। जिसे जीतना राजेन्द्र चोल ने आरवयक समझा। जावा के शासन पद्धति, राजनीतिक मान्यताओं एवं सम्बन्धित संस्थाओं पर भारतीय प्रभाव दिखाई पड़ता है। इसके लिए हम वहां से प्राप्त ग्रंथों को आधार बनाते हैं। जैसे– कामन्दक, इन्द्रलोक व नीतिप्रभ जैसे ग्रन्थों में राज्य के कर्तव्यों एवं शत्रुओं के प्रति राजा के दायित्व के विषय मे, भारतीय ग्रन्थों के समान बातों का उल्लेख मिलता है। जावा के शासक एलंग के अभिलेख विष्णुगुप्त उपायों का उल्लेख किया गया है। इस पर स्पष्ट रूप से आचार्य चाणक्य द्वारा बतायी गई राजनीति का प्रभाव दिखाई देता है।

मनु द्वारा प्रतिपादित राजा के दैवीय सिद्धान्त का प्रचलन जावा शासकों के सम्बन्ध में भी दिखाई देता है। जावा के राजा को दैवी रूप देने के लिए विष्णु, बुद्ध आदि से सम्बन्धित जो मूर्तियाँ प्रतिपादित की जाती थी उसमें सम्बन्धित राजा की मुखाकृति लगा दी जाती थी। जैसे राजा एलंग की मुखाकृति लेकर विष्णु की मूर्ति बनाया जाना। जावा के शासन प्रणाली पर भी भारतीय शासन पद्धति का प्रभाव दिखाई पड़ता है। जिसके विषय में जानकारी कामंदक, इन्द्रलोक एवं नीतिप्रभ जैसे ग्रन्थों में मिलती है। भारत के समान जावा में भी राज्य को प्रान्तों में बांटा जाता था जबकि शासन को सबसे छोटी इकाई ग्राम होती थी। यहां पर धर्माधिकरण नामक पदाधिकारी का सम्बन्ध कौटिल्य के अर्थशास्त्र में उल्लेखित धर्मस्थ नामक पदाधिकारी के समान न्याय कार्य से सम्बन्धित था।

धार्मिक सम्बन्ध :–

जहां तक भारत एवं दक्षिण पूर्व एशिया के बीच धार्मिक सम्बन्ध का प्रश्न है तो भारत में प्राचीन काल से विद्यमान शैव, वैष्णव एवं बौद्ध धर्मों का प्रभाव दक्षिण पूर्व एशिया में दिखाई देता है। इण्डोनेशिया, मलेशिया, कम्बोडिया, वियतनाम और सियाम आदि में भारतीयों ने न केवल उपनिवेश स्थापित किये बल्कि वहां के निवासियों को अपने धर्म में दीक्षित कर उन्हें भारतीय संस्कृति के रंगों में रंग दिया। दक्षिण पूर्व एशियाई देशों के निवासियों ने शैव, वैष्णव जैसे धर्मों का अनुसरण किया साथ ही वहां के विद्यमान मठों, आश्रमों आदि में वैदिक पौराणिक साहित्य एवं बौद्ध साहित्य का पठन–पाठन हुआ करता था। जिस प्रकार प्राचीन काल में भारतीय धर्म में याज्ञिक कर्मकाण्ड की प्रधानता थी उसी प्रकार दक्षिण पूर्व एशिया के भारतीय उपनिवेशों में भी यज्ञ प्रधान धर्म का प्रसार हुआ। बोर्नियों के राजा मूलवर्मा के प्राप्त यूपो (यज्ञ स्तम्भों) पर अंकित लेख में यज्ञ अनुष्ठानों एवं ब्राह्मणों के दान दक्षिणा दिये जाने का वर्णन है। हालांकि बाद के समय में यहां के द्वीपों में पौराणिक धर्म स्थान बनाने लगा जो 8वीं शताब्दी तक भलीभाँति प्रचारित हो गया था। जिसमें यज्ञ के स्थान पर मूर्तिपूजा ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। मन्दिरों में देवी–देवताओं की मूर्तियां स्थापित करना धर्म का प्रमुख अंग बन गया। देवी–देवताओं में प्रमुख स्थान शिव का था। जावा में महादेव की मूर्तियों में प्रायः स्वतन्त्र रूप से एक मुख जिनमें त्रिनेत्र, चन्द्र, उपवीत के स्थान पर सर्प एवं चार हाथ है, हाथों में पुस्तक, कमल, कमण्डल एवं त्रिशूल है। दो हाथों वाली मूर्तियों में चामर एवं अक्षमाला है[12] जावा में महादेव को दो रूपों शिव एवं महाकाल (रौद्र) में दिखाया जाता था। इनके पुत्र गणेश और कार्तिकेय थे। गणेश को गजमुखी बनाया जाता था तथा इनको विघ्न–विनाशक देवता के रूप में पूजा जाता था। महादेव की उपासना हेतु शिवलिंग स्थापना के भी प्रमाण मिलते है।[13] जावा में शिव का अर्द्धनारीश्वर रूप भी विद्यमान था। विष्णु की चतुर्भुज प्रतिमा मिली है। दुर्गा महिषासुरमर्दनी के रूप मेंम प्रचलित थी। एक मूर्ति में जावा के प्रतापी राजा एलंग को बाराहवतार

के रूप में प्रदर्शित किया गया है। विष्णु के मूर्ति के साथ–साथ दो अन्य मूर्तियां मिली है जो लक्ष्मी तथा सत्यभामा प्रतीत होती है।[14]

गुणवर्मा द्वारा दक्षिण पूर्व एशिया में बौद्ध धर्म का सूत्रपात किया गया। शुरूआती चरण में जावा व उसके समीप के द्वीप में बौद्ध धर्म के हीनयान सम्प्रदाय का सर्वाधिक प्रसार हुआ। कोच्ची से आठवीं शताब्दी ई0 में धर्मपाल नाम बौद्ध विद्वान गया था।[15] यहां पर आठवीं शताब्दी ई0 तक महायान सम्प्रदाय ने प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया। शैलेन्द्र राजा बौद्ध धर्मानुयायी थे। शैलेन्द्र राजा श्री बालपुत्रदेव ने नालन्दा में एक बिहार बनाया था। आठवीं एवं नौवीं शताब्दी ई0 में जावा में अनेक बौद्ध मन्दिर एवं चैत्य बने। इसमें बारोबदूर चैत्य का प्रमुख स्थान है। चण्डीकालसन एवं चण्डीसेतू जैसी मन्दिरों का निर्माण भी इसी काल में हुआ। शैलेन्द्र राजाओं की राजधानी श्री विजय (सुमात्रा) बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। 11वीं शताब्दी में आचार्य दीपंकर श्री ज्ञान अतीश यहां आये थे। महायान में प्रचलित मूर्तिपूजा का जावा व सुमात्रा में खूब प्रचलन था। यहां से मैत्रेय, मंजूश्री बोधिसत्व व तारा देवी की मूर्तियां अधिक संख्या में मिलती है। जिस प्रकार आठवीं शताब्दी में भारत में महायान सम्प्रदाय में वज्रयान सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ उसी प्रकार जावा में भी महायान में वज्रयान सिद्धान्तों का प्रवेश हुआ। भारत में जिस प्रकार शिव–विष्णु की संयुक्त मूर्ति हरिहर का निर्माण होता था उसी प्रकार जावा में शिव व बुद्ध को अभेद मानकर उनकी संयुक्त प्रतिमा बनने लगी थी।[16]

मालाया, सुमात्रा, जावा आदि में तो अब भारतीय धर्म का अन्त हो गया लेकिन बाली नामक एक छोटे से द्वीप में धर्म का वही परम्परागत स्वरूप विद्यमान है जो इस्लाम के प्रचार के पहले जावा में विद्यमान था। वाली में सूर्य के रूप में शिव की पूजा का प्रमुख स्थान है। साथ ही पितरों का श्राद्ध, पूजा में घृत, मधु, कुशा तथा तिलों को प्रयुक्त किया जाता है साथ ही पूजा कराने वाले पदण्ड को दक्षिणा भी दिया जाता है। बाली में आज भी संस्कृत भाषा तथा वेद, सूत्रग्रंथ, रामायण, महाभारत आदि जैसे ग्रन्थ का पठन–पाठन किया जाता है बाली में गंगा, यमुना, सरयू, कावेरी, सिन्धु और नर्मदा नामक नदियां विद्यमान है। पर भारत की इन नाम की नदियों के समान वहां की इन नदियों का जल पवित्र नहीं माना जाता। अतः जावा में आज भी भारतीय तत्व विद्यमान है।

कम्बुज में भी पौराणिक हिन्दू धर्म का प्रचार था। शिव एवं विष्णु की पूजा विशेष महत्व रखती थी। कम्बुज में श्वि को मानव एवं शिवपद के रूप में प्रतिष्ठापित किया जाता था। राजा भववर्मा के एक अभिलेख में त्रैयम्बक लिंग (शिव लिंग) के प्रतिष्ठा का उल्लेख मिलता है। शिव के साथ–साथ पार्वती और दुर्गा की मूर्तियां भी कम्बुज में बनायी जाती थी। शिव की मानव रूपी मूर्तियों में उसके शीर्ष पर विराजमान गंगा–यमुना को प्रदर्शित किया जाता था। शिव के समान विष्णु की भी पूजा प्रचलित थी। राजा जयवर्मा एवं पटरानी कुलप्रभावती के पुत्र गुणवर्मा के एक अभिलेख में चक्रतीर्थ स्वामी विष्णु के वैष्णव पद की प्रतिष्ठापित किये जाने का उल्लेख है। कम्बुज में शिव–विष्णु को अभेद मानकर उसकी संयुक्त मूर्ति निर्माण एवं पूजा की प्रथा प्रचलित थी। ताम्रपुर के एक प्रधान ने शिव–विष्णु की एक मूर्ति स्थापित की।[17] राजा ईशानवर्मा के 'अड्यू अभिलेख' में शंकर और अच्युत की अर्द्धशरीर प्रतिमा बनाये जाने का उल्लेख मिलता है। कम्बुज में त्रिमूर्ति (ब्रह्मा, विष्णु, महेश) की पूजा का प्रचलन था जिनमें शिव–विष्णु के साथ ब्रह्मा की भी स्तुति की जाती थी।

चम्पा में पौराणिक हिन्दू धर्म के साथ–साथ बौद्ध धर्म भी प्रचलित था। चम्पा में यज्ञ अनुष्ठान का प्रचलन था। राजा प्रकाशधर्म के 'माइसोन अभिलेख' में अश्वमेघ यज्ञ किये जाने का उल्लेख मिलता है। चम्पा में शैवधर्म का अधिक प्रसार था। शैव मन्दिरों के प्रमुख स्थान माइसोन एवं पो नगर थे। माइसोन के मन्दिर में प्राप्त शैव मूर्तियाँ साधारण एवं खड़ी हुई मुद्रा में दिखाया गया है। नन्दी के साथ तथा तांडव नृत्य करते हुए शिव की मूर्तियाँ प्राप्त हुई है।[18] चम्पा के अभिलेखों में शिव की महिमा का वर्णन पुराणों में वर्णित शिव के गुणों एवं उसके सम्बन्धित कथाओं के समान है, जैसे श्वेत भस्म शरीर पर लपेटे रहना, शिव के तीन नेत्र होना, कामदेव को भस्म करना आदि। चम्पा के अभिलेखों में स्वर्ग–नरक का भी उल्लेख मिलता है। यह भारतीय धर्म में प्रचलित स्वर्ग–नरक

की धारणा के अनुरूप दिखाई देता है। यद्यपि शिव की पूजा के लिए अधिकांशतः लिंग का उपयोग किया जाता था लेकिन शिव को मानव रूप में मूर्ति बनाकर मन्दिर में प्रतिष्ठापित करने की परम्परा विद्यमान थी। शैव धर्म की प्रधानता होते हुए भी चम्पा में वैष्णव धर्म का भी प्रभाव रहा था। लेखों में विष्णु के उपासना की बात कही गई है। विष्णु को नारायण, हरि, गोविन्द, माधव, विक्रम और त्रिभुवनाक्रान्त नामों से भी जाना जाता था।[19] विष्णु के वाहन गरूड़ से भी चम्पा के लाग परिचित थे। गरुड़ को पक्षी के मुख और सिंह के शरीर के रूप में दिखाया गया है जो सर्प का शिकार कर रहा है।[20]

जिस प्रकार पो एवं माइसोन नगर हिन्दू मन्दिर से सम्बन्धित थे उसी प्रकार दोंग–दुओंग नगर बौद्ध धर्म का केन्द्र था। यहाँ से बड़ी संख्या में बौद्ध मन्दिर मिला है। चीनी–यात्री ईत्सिंग लिखता है कि चम्पा में बौद्ध धर्म के सम्मितीय निकाय एवं कुछ सर्वास्तिवाद निकाय का प्रचलन था। चम्पा के अभिलेखों में बुद्ध के लिए जिन, लोकेश्वर, सुगत, अभपद, शक्तिमुनि आदि नामों का उपयोग मिलता है। राजा जयइन्द्रवर्मा ने 875 ई0 में लक्ष्मीन्द लोकेश्वर की मूर्ति प्रतिष्ठापित की थी और भिक्षुसंध के लिए एक बिहार का निर्माण करवाया था। मृत्यु के पश्चात इसे 'परमबुद्धलोक' कहा गया है। यह सूचित करता है कि वह बौद्ध मतानुयायी था। इसी प्रकार वर्मा में भी बौद्ध धर्म के प्रचलन के साक्ष्य मिलते हैं।

साहित्यिक सम्बन्ध :–

दक्षिण पूर्व एशिया के आदिम लोग जिन भारतीय तत्वों से प्रभावित हुए उनमें एक तत्व साहित्य भी है। इस तत्व को सूवर्णद्वीप की मिट्टी में गहराई से प्रत्यारोपित किया गया। चौथी शताब्दी ई0 से सातवीं शताब्दी ई0 के बीच वर्मा, सियाम, मलाय प्रायद्वीप, सुमात्रा, जावा, बोर्नियों में बड़ी मात्रा में छोटे–छोटे संस्कृत के अभिलेख मिले हैं। यह सभी दिखाता है कि सातवीं शताब्दी ई0 के अन्त से पूर्व यहां संस्कृत भाषा का विकास हो चुका था। चम्पा के सबसे प्राचीन माइसोन लेख में भद्रवर्मन के विषय में कहा गया है कि वह चारो वेदों का पूर्ण ज्ञाता था।[21] जबकि 914 ई0 के 'पोन्नगर अभिलेख' के अनुसार राजा इन्द्रवर्मा (तृतीय) मीमांसा, षटतर्क (षटदर्शन), बौद्धदर्शन, व्याकरण, आख्यान का मूर्धन्य विद्वान था। जयइन्द वर्मा (सप्तम) व्याकरण, ज्योतिष, महायानदर्शन, धर्मशास्त्र में परांगत था। चम्पा में रामायण, महाभारत, पुराण आदि का इतना अधिक प्रचलन था कि यहां के अभिलेखों में रामायण जैसे महाकाव्य के पात्रों से वहां के राजाओं की तुलना की गई है। जैसे दशरथ एवं राम का उल्लेख बार–बार दिखाई देता है। राजा प्रकाश धर्म के माइसोन अभिलेख में दोणपुत्र अश्वत्थामा का उल्लेख मिलता है। कृष्ण का उल्लेख भी अभिलेखों में प्राप्त होता है।

कम्बुज में संस्कृत की अधिक प्रगति दिखाई देती है क्योंकि प्राप्त संस्कृत के शिलालेख सुन्दर एवं दोषरहित काव्य शैली में लिखे गये हैं। यद्यपि यहाँ पर प्राचीन भारतीय साहित्य के तीनों अंगों– संस्कृत, पालि और प्राकृत को अपनाया गया, लेकिन संस्कृत को ही सर्वोच्च स्थान प्राप्त हुआ था। कम्बुज में आये ब्राह्मण मेहमानों ने संस्कृत की पवित्रता को बनाये रखा तथा लेखन कार्य हेतु ब्राह्मी लिपि का प्रयोग किया यद्यपि कहीं–कहीं दक्षिणी पल्लव लिपि भी मिलती है।[22] यहां के राजाओं के लेखों में संस्कृत भाषा का प्रयोग मिलता है। यशोवर्मन के एक शिलालेख में 50 छन्द मिलते हैं। सम्राट यशोवर्मन सभी शास्त्रों में पारंगत था तथा शिल्प शास्त्र, लिपि, भाषा, नृत्य, गीत तथा विज्ञान का अच्छा ज्ञाता था। उसने महाभाष्य पर टीका भी लिखी थी।[23] यहां के प्राप्त शिलालेखों से यह बात स्पष्ट होती है कि यहां के शिलालेखों के लेखक संस्कृत के सभी रूपों से अच्छी तरह परिचित थे जिनका प्रयोग सफलतापूर्वक शिलालेखों में किया। कम्बुज के लोग में भारतीय महाकाव्यों, पुराणों एवं साहित्य के अन्य शाखाओं के साथ–साथ भारतीय दार्शनिक एवं आध्यात्मिक विचारों में भी गहरी रूचि दिखाई देती है। यहां के शिलालेखों में वेद, वेदांग, स्मृति, महाकाव्यों (रामायण–महाभारत), बौद्ध एवं जैन सिद्धान्तों एवं अन्य ग्रन्थों का भी उल्लेख मिलता है। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि कम्बुज के शिलालेख संस्कृत साहित्य के इतिहास में एक उत्कृष्ठ अध्याय जोड़ते है।

जावा में संस्कृत भाषा के साथ–साथ स्थानीय भाषा का भी विकास हुआ। जावा में भारतीय साहित्य एवं शिक्षा का प्रवेश पाँचवी शताब्दी ई0 तक हो चुका था। पूर्वावर्मन के लेख से पता चलता है कि उसके रचयिताओं को भाषा एवं व्याकरण का अच्छा ज्ञान था।[24] सबसे पहले जावा की भाषा में अमरमाला नामक ग्रन्थ की रचना हुई। यह ग्रन्थ भारत में लिखे गये संस्कृत भाषा के ग्रन्थ अमरकोश की शैली में लिखा गया है। राजा धर्मवंश एवं एलंग के शासनकाल में जावी भाषा में अनेक संस्कृत के ग्रन्थों का अनुवाद हुआ। धर्मवंश के शासन काल में महाभारत का अनुवाद हुआ। राजा एलंग के समय में कृष्णायन एवं सुमनसान्तक जैसे ग्रन्थ लिखे गये। कवि त्रिगुण द्वारा रचित कृष्णायन में कष्णा द्वारा रूक्मिणी के हरण एवं जरासन्ध से युद्ध का वर्णन है। जिस प्रकार के नीति विषयक कथन संस्कृत के ग्रन्थ चाणक्यशतक, पंचतन्त्र में मिलते हैं वैसा ही कथन मजपहित राज्य के अन्त में लिखा गया ग्रन्थ नीतिसार (नीतिशास्त्र) में भी मिलता है। बाली से कामन्दक नीतिसार नामक संस्कृत में लिखा गया राजनीति का ग्रन्थ मिलता है अन्य ग्रन्थ इन्द्रलोक तथा नीतित्रय भी मिलता है। जिस प्रकार भारत में पंचतन्त्र एवं हितोपदेश जैसी कहानियाँ मिलती है वैसी ही कहानियाँ जावी भाषा में मिलती है जिन्हें तन्त्री कहते हैं। तन्त्री कहानियाँ ऐसी रानी से कहलवायी गयी है जिसका पति प्रतिदिन नई महिला से विवाह करता था। इस प्रकार जावा में एक समृद्ध प्राचीन साहित्यिक परिवेश था। आज भी वहां पर बहुत सारे भारतीय संस्कृत के तत्व दिखाई देते हैं जो परस्पर सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है।

निष्कर्ष :–

भारत एवं दक्षिण पूर्व एशिया दोनों की संस्कृतियां परस्पर मेल–जोल से समय के साथ–साथ समृद्ध होती गई। परस्पर आदान–प्रदान से समृद्ध हुई संस्कृति का दोनों उपमहाद्वीपों के सम्बन्धों में अमूल्य योगदान रहा है, जिसने न केवल प्राचीन काल में सामाजिक संरचना भाषा, धर्म, शासन व्यवस्था इत्यादि के प्रभावित किया बल्कि वर्तमान समय में भी भारत एवं दक्षिण पूर्व एशिया बीच सम्बन्धों को प्रगाढ़ बनाने में ठोस आधार प्रदान कर रहा है। इस विषय पर विद्वानों का निरन्तर शोध जारी है जिससे सम्बन्धों के नये तत्व एवं प्रमाण उद्घाटित हो रहे हैं। भारत एवं दक्षिण–पूर्व एशिया के बीच प्राचीन काल से परस्पर चले आ रहे सम्बन्धों के तत्वों को सामने लाने से भारत के 'एक्ट ईस्ट पालिसी' की सफलता हेतु मजबूती प्राप्त होगी।

सन्दर्भ सूची–

1. कावले 3.124
2. विंटरनिज, 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन लिटरेचर', भाग 2, पृ0 156
3. मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप' भाग 1, पृ0 60
4. ए0के0 कुमारस्वामी, 'हिस्ट्री ऑफ इण्डियन एण्ड इण्डोनेशियन आर्ट'
5. आर0सी0 मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप', पृ0 59
6. सिडो, ए0हि0 पृ0 38
7. मजूमदार, कम्बुज लेख, नं0 34, पृ0 45
8. आर0एन0 पाण्डेय, 'दक्षिण पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृत', पृ0 144
9. कृष्ण चन्द्र श्रीवास्तव, 'प्राचीन भारत का इतिहास तथा संस्कृति', पृ0 512
10. मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप' भाग–1, पृ0 171
11. मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप' भाग–1, पृ0 426
12. केम्पर, 'अर्ली इण्डोनेशिया आर्ट', पृ0 157
13. मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप– भाग–2, पृ0 100
14. मजूमदार, 'सूवर्णद्वीप', भाग–2, पृ0 104
15. कर्न, 'मैनुअल ऑफ बुद्धिज्म', पृ0 130
16. सिडो, 'ए0हि0', पृ0 333

17. मजूमदार, 'कम्बुज लेख' नं0 24, पृ0 30
18. स्टर्न, 'आर्ट चम्पा', चित्र नं0 54, 62
19. मजूमदार, 'चम्पा' लेख नं0 11, 17, 21
20. मासपेरो– 'चम्पा', पृ0 11
21. मजूमदार, 'चम्पा' लेख नं0 4, पृ0 6
22. वी0आर0 चटर्जी, 'इण्डियन कल्चरल इन्फ्ल्यूंस', पृ0 111
23. मजूमदार, 'कम्बुज लेख', नं0 61, पृ0 86
24. चटर्जी एवं चक्रवर्ती– 'इण्डिया एवं जावा', पृ0 23